भारत में समरसता : नरेन्द्र मोदी

डॉ० शिवाली अग्रवाल
एसो0 प्रोफे0, राजनीति विज्ञान विभाग,
इस्माईल नेशनल महिला पी०जी० कॉलिज,
मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत
Email: drshivali09@gmail.com

सारांश

संविधान सभा की आखिरी बैठक में बाबा साहेब अम्बेडकर ने नये स्वतन्त्र हुये और जन्तान्त्रिक मूल्यों के आधार पर शासन चलाने के लिये तत्पर देश को एक चेतावनी दी थी उन्होंने कहा था, ''मात्र राजनीतिक जनतन्त्र व्यक्ति नहीं है हमें सामाजिक जनतन्त्र भी स्थापित करना है। इसके बिना हमारी आजादी भी अधूरी है और जनतन्त्र में हमारी आस्था भी खंडित हैं। उन्होंने चेताया था हमें कि हम विसंगतियों से घिरी एक सामाजिक व्यवस्था के साथ नये युग में प्रवेश कर रहे हैं और यदि ये विसंगतियाँ नहीं मिटायी गयी तो समता, स्वतन्त्रता, न्याय और बंधुता पर आधारित समाज बनाने के हमारा लक्ष्य कभी नहीं प्राप्त किया जा सकता। हमारी त्रासदी यह है कि अबादी के सत्तर साल बाद भी हम देश के सामाजिक मंच और सामूहिक सोच से इन विंगतियों को दूर नहीं कर पाये।

प्रस्तावना

हमारा संविधान देश के हर नागरिक को समानता का अधिकार देता है लेकिन हम आज तक जातियों, वर्गों, धर्मों के कटघरों में कैद है। कैद कहना शायद स्थिति को सही तरह से नहीं दर्शाता। वस्तुतः हम आज भी ऊँच–नीच के सोच से उबर नहीं पाये हैं। व्यक्ति और व्यक्ति के बीच जातियों, वर्णो, धर्मों की न जाने कितनी दीवारें आज भी खड़ी हैं बल्कि खड़ी नहीं है हमने खड़ा किया है उन्हें।'' यह सही है कि देश का हर नागरिक सिद्धान्ततः समान हैं सामान्य नागरिक से लेकर राष्ट्रपति तक के लोगो का मूल्य बराबर है। लेकिन हमारी समाज व्यवस्था और सामाजिक सोच में आज भी उस समरसता का अभाव है जो किसी राष्ट्र को एक बनाती है। अनेकता में एकता की बात तो हम करते हैं लेकिन हकीकत यह है कि अपनी एकता को भी अनेकानेक टुकड़ों में बाँट रखा है हमने।

हम धर्म के नाम पर बँटे हुये हैं, भाषा के नाम पर बँटे हुये हैं, जाति के नाम पर बँटे हुये है, इतना बँटवारा अपने आप में एक चेतावनी है। बँटते–बँटते तो सब बँट जायेगा। हमारे अस्तित्व को चुनौती है और इस चुनौती को स्वीकार करने का मतलब उस सबको बदलने का संकल्प लेना

है जो ''एक ह्रदय हो भारत जननी'', के सपने को पूरा नहीं होने दे रहा। 'सब' में हमारा अज्ञान, हमारा प्रमाद और हमारा संकुचित सोच तो शामिल ही है, वे ताकतें भी इसके लिए उत्तरदायी है जो अपने स्वार्थ के लिये सामाजिक और सामूहिक हितों की बलि चढ़ाने के लिए लगातार तत्पर रही है। यह सही है कि अपेक्षित दिशा में बदलाव के लिये व्यक्ति की सोच में बदलाव जरूरी हैं लेकिन हमें व्यवस्था के ठेकेदारों की स्वार्थपरता से भी मुकाबला करना होगा। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये ये ठेकेदार सामाजिक हितों और सामाजिक न्याय, दोनों की बलि चढ़ाने में तनिक भी संकोच नहीं करते। अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिये ये तत्त्व किसी भी सीमा तक जा सकते ही चले जाते हैं।

तो फिर वह समरस समाज बनेगा कैसे जिसकी कल्पना और कामना हमने आजादी पाने के समय की थी? जनतान्त्रिक व्यवस्था में इस प्रश्न का उत्तर एक ही हो सकता हैं नागरिक की सतत जागरूकता और अपने विवेक का पालन करने की नागरिक की जिद। समरस समाज भारत की एक मूलभूत आवश्यकता है जो भारतीय मनीषियों के विमर्श के वर्तमान समसामयिक परिस्थितियों में ज्वलन्त मुद्दा है।

सामाजिक समरसता बनाम समानता

समानता चाहे वह राजनीतिक सामाजिक या आर्थिक क्षेत्र में हो यह कभी भी निरपेक्ष नहीं हो सकती क्योंकि समानता का आधार क्या हो ? यह अत्यन्त विमर्श का बिन्दु है। मनुष्यों में कितने ही आधार हो सकते है। समानता के लिये रंग, आयु, आकार, नाक–नक्शों के प्रकार आदि–आदि, समानता की किसी एक परिभाषा पर नहीं पहुँचा जा सकता। फ्रांस की क्रान्ति से निकला ये शब्द समानता, पाष्चात्य विचारधारा का होने के कारण हमने पकड़ तो लिया परन्तु इसने भी संघर्ष को जन्म दिया इस पर विचार करना होगा। भारतीय ऋषियों ने समानता को भौतिक धरातल पर खोजने के प्रयासों से होने वाली निराशा को त्यागकर अध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं चिन्तन की प्रत्यक्षानुभूति के बल पर वह आधार खोजा जिससे हम सबके अन्दर समानता हो सकती है। वह आधार अध्यात्मिक है।

भारतीय ऋषियों ने जिस तत्त्व की खोज की वह कण–कण अणु–अणु में व्याप्त हैं, वो है परमतत्त्व जो सर्वत्र विद्यमान है केवल इसी के आधार पर हम समानता का अनुभव कर सकते हैं किन्तु व्यवहारिक धरातल पर इस तत्त्व का अनुभव समरसता के आधार पर ही हो सकता है। जैसे एक पौधे के जड़, तना, डालियाँ, पत्ते, फूल और फल आदि समान नहीं है किन्तु पूरे पौधे में एक ही रस बहता है जिसके कारण वह सारा पौधा एक ही कहलाता है। यदि उसकी जड़ काट लें तो पौधा समाप्त हो जायेगा। मनुष्य का शरीर भी ऐसा है जिसमें हाथ, नाक, कान आदि अलग–अलग अंग है। सबके रूप और काम भी अलग–अलग हैं। इनमें कोई एकरूपता नहीं। परन्तु अंग प्रत्यंगों में अनेकता और भिन्नता होने के बाद भी उन सबमें एक ही रस बहता है और उसी से वह फलते–फूलते हैं।

दुनिया में विविधता है तो संघर्ष भी। यह विविधता परस्पर पूरक बनते हुये किस प्रकार से समग्र विकास की दिशा में आगे बढ़ सके यह एक मूलभूत प्रश्न रहता है। इसीलिये

समय–समय पर इन विविधताओं को भेद न मानते हुये एकात्म दृष्टि से चलने की प्रक्रिया अपने देश के अन्दर विकसित हुयी।

भारतीय समाज के अन्दर कभी गुण कर्मानुसार वर्ण थे। बाद में फिर व्यवसाय के अनुसार जातियाँ विकसित हुयी। मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों ने हिन्दु समाज में वर्णभेद पैदा करके न्याय की अवधारणा को खंड–खंड कर दिया। जाति व्यवस्था ने हिन्दू धर्म में समानता की अवधारणा पर प्रश्न चिहन लगाया परन्तु क्या मनुस्मति ही हिन्दु धर्म है। यह भी एक प्रश्न है। क्योंकि मनुस्मृति के अतिरिक्त वेदों में ऐसे मन्त्र भी मिलते हैं जो सभी वर्णों को समान रूप से श्रेष्ठ मानतें है।

'थकारेभ्यश्च वो कुलालेभ्यः कमरिभ्यश्च वो नमो निशादेभ्यःवो नमो नमः (शुक्ल यजुर्वेद 31/1)[1] अर्थात् ब्राहमण श्रेष्ठ है लेकिन जो रथ बनाता है जो बर्तन बनाता है, लोहे का काम करता है, निशाद है, वह भी श्रेष्ठ है।

यह समाजिक आधार पर उत्पन्न भेद की एकात्म दृष्टि से दूर करने की प्रक्रिया थी। उंसी तरह से ये जो 'व्यक्ति–समाष्टि, सृष्टि' जिसका अभिव्यक्ति है उस अकल्पनीय असीम तत्त्व की अनुभूति के लिये विभिन्न प्रकार की साधना पद्धतियाँ विकसित हुयी इसीलिये भिन्न–भिन्न प्रकार के सम्प्रदाय बने परन्तु इन सबकी उत्पत्ति उस धरातल से हुई जहाँ पर एकत्व है।

हिन्दू समाज के आचार संहिता रूपी ग्रन्थ मनुसंहिता के वर्ण के बाद जाति जन्मता धर्मग्रन्थ भी हिन्दु समाज के प्रखर चिन्तको को रुढ़िग्रस्त होने से नहीं रोक पाया। समय–समय पर विभिन्न समाज सुधारकों ने जाति भेद के विरुद्ध आवाज उठायी और समाज को वर्षों पुरानी कुप्रथाओं और भेदभाव से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया।

भारतीय संविधान के निर्माता डॉ० अम्बेडकर ने संविधान सभा के भाषण में सकेंत रूप में यह बाते कही थी कि

''हम व्यवस्था में तो प्रावधान कर रहे हैं लेकिन अगर सामाजिक समता नहीं लायी गयी? हमने बंधुता के आधार पर एक–दूसरे से बराबरी का, समानता का व्यवहार करना नहीं सीखा तो यह विषमता जायेगी क्यों ? किसी शत्रु ने अपनी ताकत पर भारत को जीता, ऐसा इतिहास नहीं है। हमारे अपने भेदों के कारण, आपसी झगड़ों के कारण हमारी फूट के आधार पर वह विजयी हुआ। इस इतिहास की पुनरावृत्ति न हो, इसकी चिन्ता हमको करनी पड़ेगी।'' अम्बेडकर जी की ये चिन्ता स्वाभाविक थी। [2]

भारतीय संविधान में अस्पृश्यता विरोधी कानून हैं आज छुआछूत दंडनीय अपराध है परन्तु कानून से हृदय परिवर्तन नहीं होता और जब तक यह नहीं होता, तब तक भेदभाव की दीवारें नहीं हटेगी। समता ऊपरी एवं भौतिक समानता का शब्द है जबकि समरसता आन्तरिक धनिष्ठता का परिचायक है। समता व समरसता न होने से ही विगत इतिहास में भारतीय समाज को पराजय का मुँह देखना पड़ा। ऐसा इसीलिये हुआ क्योंकि विशेषकर हिन्दू समाज जाति बिरादरी, ऊँच–नीच और क्षेत्रीयता में विभाजित रहा। ऐसे भेदों को समाप्त करने के लिये भी समरसता आवश्यक तत्व है।

1969 में उडुपी में हुये विश्व हिन्दु परिषद सम्मेलन में हिन्दू धर्म, हिन्दु समाज की दृष्टि से एक क्रान्तिकारी उद्घोषणा हुयी। सभी शंकराचार्यो ने एकमत से कहा कि अस्पृश्यता हमारे धर्म को अंग नहीं है ''हिन्दुत्वः सहोदयः सर्वे–सारे हिन्दू भाई है सहोदर है।

इतिहास पर दृष्टि डालें तो कांग्रेस के शिमला सम्मेलन (29 जून, 1945) के अवसर पर सर्वण हिन्दू (कास्ट हिन्दू) तथा परिगणित जाति 'शब्दों का प्रयोग कर हरिजनों को हिन्दुओं से अलग करने का प्रयास किया गया। 1911 तक जनगणना में सिख हिन्दुओं के अन्तर्गत ही गिने जाते थे। जबकि 1920 से सिखों में भी अलगाव का भाव निर्मित किया गया। उल्लेखनीय है कि इसके पहले सिखों और वैष्णों के गुरूद्वारे एक ही होते थे। पर आन्दोलन के परिणामस्वरूप वैष्णव महंतों को गुरूद्वारे से निकाल बाहर कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे–धीरे भारतीय समाज खंड–खंड होता गया।

समरसता दर्शन– भारत के गौरवशाली इतिहास में एक काले धब्बे के रूप में छुआछूत, जाति विद्वेष और जाति संघर्ष हमेशा से भारतीयों के मन को उद्धेलित करता रहा। परन्तु ये भी सर्वविदित है कि विभिन्न काल, दशा और दिशा में भारत के अनेक कालजयी महापुरूषों ने इस कलंक को मिटाने के लिये प्रयास किये हैं। सभी ने प्रयास किया कि इस सामाजिक भेदभावों को मिटाकर सम्मान से जीने का गौरव भारत के प्रत्येक नागरिक को प्राप्त हो। महात्मा गाँधी से लेकर अम्बेडकर तथा आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तकों की एक लम्बी सूची है जिन्होंने अपने–अपने विचार वीथिका से और अपने प्रकाट्य तर्कों और प्रयासों से जातीय विषमता और भेदभाव को भारत से मिटाने का अथक प्रयास किया। इसी क्रम में यदि नरेंद्र मोदी जी के प्रयासों को देखा जायें तो यह कहना उचित होगा कि उनहोंने वंचितों की दशा और मानसिकता का गहन अध्ययन किया। अभी तक जितने भी दलित विचारक हुये हैं उनके चिन्तन का केन्द्र एक ऐसे समाज का निर्माण हुआ था जिसमें दलित, शोषित और वंचित मनुष्यों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकें। उन्हें शोषण से मुक्ति मिले तथा समाज में उन्हें वो सब प्राप्त हो जो अब तक एक वर्ग अथवा जाति विशेष से होने के कारण उनको नहीं मिल पाया था। वंचित वर्ग को समाज की मुख्य धारा में जाने हेतु आरक्षण की व्यवस्था संविधान निर्माताओं ने की परन्तु 70 साल बाद भी दलित व वंचित वर्ग समाज में अपने सम्मान के लिये संघर्ष कर रहा है और समाज में जतीय संघर्श भारत की एकता को छिन्न भिन्न करने का प्रयास कर रहा है। ऐसे में नरेंद्र मोदी कहते हैं कि समतावादी समाज की अवधारणा से ही इस समस्या का हल नहीं खोजा जा सकता बल्कि इसके लिये समरसता वादी समाज ही भारत की एकता और संस्कृति को अक्षुण्य बनायेगा।

समरसता दर्शन के प्रतिपादक नरेंद्र मोदी

इस समरसता भाव को मोदी जी ने अपने समरसता दर्शन के माध्यम से भारत के समक्ष प्रस्तुत किया। वो इस बात की प्रतिष्ठापक के रूप में सहासपूर्वक आगे आये कि भारतीय समाज अर्थात् हिन्दू समाज में परिवर्तन स्वीकारने की सबसे बड़ी ताकत है जो इसे परम्परावादी होते हुये भी आधुनिक गतिमान प्रवृत्तियों को अपने अन्दर समाहित करती है।

उनका समरसता दर्शन केवल दलित और पिछड़ों के सन्दर्भ में ही बल्कि वो उसे एक विराट और दिव्य दर्शन के रूप में समाज के सामने लाने का प्रयास करते हैं।

वस्तुतः मोदी का समरसता दशर्न पूर्ण रूप से एक अध्यात्मिक और सास्ंकृतिक दर्शन होने के साथ समाज का समग्र रूप से चिन्तन करता है। एक लोककल्याणकारी राज्य को जिस भावसे जनता के लिये कार्य करना है जिस भाव की चर्चा भारवि ने किरातार्जुनीय महाकाव्य के प्रथम सर्ग में की है कि राजनीति के लिये नयवर्त्म शब्द का प्रयोग इस आशय से किया जाता है कि उसकी साधनात्मकता और धर्मशीलता पर बल दिया जा सके।[4]

एक दार्शनिक की भाँति एक समाज सुधारक की भाँति समतावादी समाज से भी अधिक समरसतावादी समाज पर अधिक बल देते हुये वो मानते हैं कि ''अस्पृश्यता एक कलंक है वो समाज से तो वैधानिक उपायों और दण्ड के भय से व्यवहार में तो समाप्त हो सकती है पर जब तक मनों से नहीं मिलेगी तब तक समरस समाज नहीं बन सकेगा। हम अपने दिमागों के भीतर एक–दूसरे के प्रति यदि कड़वाहट और ग्लानि भाव रखेंगे तो कितना ही आरक्षण ले दे कर आर्थिक उन्नति कर लें। समाज एक न हो पायेगा ममत्व का भाव जाग्रत नहीं है ता समाज का स्नेह बन्धन कभी न जुड़ेगा और ऐसा समाज हमेशा टूटने के कगार पर खड़ा रहेगा जिस देष का समाज खण्डित हो जाता है। वह देष भी धीरे–धीरे खण्डित होने लगता है।

समतावादी समाज पाश्चात्य विचारधारा की यान्त्रिक विचारधारा का ही एक दृष्टिकोण न बन कर रह जाये इस आशंका से नरेन्द्र मोदी का मन विचलित था क्योंकि समानता प्राप्त भारतीय समाज यदि रूढ़िवादी जातिवादी विद्वेष की भावना से ग्रस्त रहेगा तो भी वह भीतर से समान न हो पायेगा और प्रेम, सहयोग कभी भी भारतीय समाज की सहज पहचान न बन पायेगा। समरस दर्षन के प्रणेता नरेन्द्र मोदी कहीं–कहीं पं० दीन दयाल उपाध्याय के 'एकात्म मानवदर्शन' से भी प्रेरणा लेते प्रतीत हो रहे हैं जहाँ उन्होंने एक संवेदनशील समाज के बारे में मानवीय एकात्म अनुभूतियों के प्रकाश में भारतीय समाज को एकात्म मानवता वादी दर्शन दिया।

दलित समाज को लेकर बाबा साहेब अम्बेडकर के प्रयासों के प्रति नतमस्तक होते हुय नरेन्द्र मोदी ने दलितों और वंचितों के प्रति समान पीड़ा का अनुभव किया वो जानते थे कि भारतीय समाज का 25.2ः प्रतिशत यदि पीड़ा में हो तो ये पूरे भारतीय समाज के विकास को अवरूद्ध कर देगा और इसका हल निकालने के लिये वो प्रयासरत दिखे।

मोदी कहते हैं, ''दलित समाज के विकास की दिशा क्या–समता या समरसता? यह प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आज की परिस्थितियों को वर्तमान भारत में आरक्षण मिलते हुये सत्तर सालों में समता यकीनन पूर्णता में प्राप्त नहीं हुयी परन्तु फिर भी सामाजिक स्तर पर जहाँ समानता आ भी गयी है तो मनों में समरसता का अभाव होने के कारण विद्वेष जस का तस बना हुआ है।'' इसी बात से क्षुब्ध होकर नरेन्द्र मोदी पूछते हैं कि, ''इस समाज के मूलभूत दोषों में बदलाव कौन लाएगा? समाजिक जीवन के अंदर हमारे जो पूर्वज कह गए हैं, हमारे बाप–दादा कहकर गए हैं, उसको क्यों स्वीकार करें हम? आज भी अस्पृश्यता के बारे में अलग–अलग विचार मन में रखते वाले एक–दो आदमी मिलते हैं, यह हमारी बदनसीबी है। आज से 400 साल पहले

कैसी स्थिति थी! और ऐसे समय में कोई नरसिंह मेहता अस्पृश्यता–निवारण के लिए अपनी ही जाति के खिलाफ संघर्ष कर रहा हो, यह कितनी बड़ी बात है। कितनी बड़ी सामर्ध्य उनके पास थी। कितनी प्रतिबद्धता होगी उस महापुरूष में। 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने वाला समाज, ईश्वर के साक्षात्कार को स्वीकार करने वाला समाज, नमस्ते कहने के साथ अपने अंदर जो परमात्मा है, उसको दिन भर प्रणाम करने वाला समाज। तू दलित माता के गर्भ से पैदा हुआ है, इसलिए हम दोनों अलग हैं– इस प्रकार की विकृति कब तक झेलता रहेगा ? समय–समय पर इस विकृति के विरूद्ध महापुरुषों ने आवाज उठाई। सौराष्ट्र के अंदर गंगा सती 200 वर्ष पहले राजपुत परिवार की कन्या उस वक्त वह गीत लिखती थी, गाती थी और पढ़ती थी। समाज को संस्कारित करने का प्रयास करते हुए उसने अपनी एक पंक्ति में कहा है–

'जातिपणुं छोडी ने अजाति थाउरे, काढवो वरण विकास रे,
जातिने भाँति नहीं, हरिकेरा देशमा रे, एवी रीते रेउ निर्मल।'

(जाति–पाँत छोड़कर जाति–विहीन बनना और अपने मन से जाति की विकृति निकालकर निर्मल बनने की बात गंगा सती ने अपने भजन में कही है।) 20 साल पहले एक राजपुत कन्या, जिसका ग्रामीण परिवेश में विकास हुआ, वह भी समाज का दर्शन करते समय कहती थी, ये जातिभेद छोड़ दो। समाज में बदलाव लाने के लिए कितने सारे प्रयास किए गए।

समाज में एक वर्ग ऐसा भी है, जिनसे ऐसा लगा कि आर्थिक व समाजिक स्थिति ठीक होगी, तभी समस्या का समाधान होगा। एक सर्वण का लड़का और एक दलित का लड़का डॉक्टर हो जाए तो बात पूरी हो जाएगी। मुझे लगता है कि समता अंतिम लक्ष्य नहीं हैं समता तो मात्र एक पड़ाव है, एक स्टेशन है। समरसता अंतिम लक्ष्य होना चाहिए। बाबा साहेब अम्बेडकर इतने पढ़े–लिखे व्यक्ति वडोदरा में जब सयाजीराव गायकवाड़ साहब के यहाँ थे। बाबा साहब विद्वान् थे, सामर्थ्यवान थे। गायकवाड़ ने उनको पसंद किया था, लेकिन अर्दली उनको संचिका फेंककर देता था। उनको यह बात अच्छी नहीं लगी। बाब साहब दलित थे और वह चपरासी था सवर्ण, इसीलिए संचिका उन्हें फेंककर देता था। यह उदाहरण बताता है कि समता समाज का अंतिम लक्ष्य नहीं हो सकती हैं समरसता समाज का अंतिम लक्ष्य हो तभी समस्याओं के समाधान संभव हैं। समरसता की गारंटी यही है–समभाव, योग, ममभाव बराबर समरसता। समभाव भी चाहिए और ममभाव भी चाहिए। समता और ममता जुड़ी हुई है। आर्थिक सामाजिक अवस्था में परिवर्तन न हो ओर इससे मेरे इस चिंतन प्रवाह ने मेरे जीवन में जो संस्कार दिए है। अथवा जो मिले हैं, वह समाज को जोड़ने के लिए हैं। मैं तो हमेशा कहता हूँ कि कोई समाज में भक्ति कभी भी प्रकट नहीं हो सकती हैं जिस समाज में भक्ति प्रकट न हो, उस समाज का शक्तिमान बनना संभव नहीं हो सकता है। इसलिए समाज में करूणा की धारा, समाज में संवेदना का सृर्श–यह समाज को भक्ति की ओर ले जाता है और यह भक्ति अंततः शक्ति का रूप धारण करती है। यह शक्ति का रूप समाज की चेतना का कारण बनकर युगों–युगों तक इस समाज को संचालित करने का काम करती हैं ।

नरेन्द्र मोदी एक उदाहरण के माध्यम से समरस समाज को समझाते हैं ।

''अयोध्या में भारत के आसध्य प्रभु राम के जन्म स्थान पर भव्य मन्दिर बनें। इसके लिये सारे देश में एक स्वर से आन्दोलन हुआ था। धार्मिक भावनायें प्रबल थी। देश के गणमान्य संत महंत समग्र आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे। इसी पार्श्वभूमि के बीच जब 9 नवंबर, 1989 को भव्य राम मन्दिर के शिलान्यास का प्रसंग आया, तब किसी मठाधीश आचार्य संत या महंत के हाथों शिलान्यास करवाने के बदले बिहार के रामभक्त एक दलित के हाथों शिलान्यास सम्पन्न हुआ। दलित के हाथों राम मन्दिर के शिलान्यास यह मात्र मन्दिर के शिलान्यास की नींव डाले ऐसा नहीं वरन् यह घटना समरस समाज की नींव डालने वाली थी। यह नवक्रान्ति का उद्घोष है।''

समरसता अथवा सममत्व

भारतीय समाज को समता की आवष्यकता है या समरसता की तो ये समझने वाला दर्शन है कि समरसता यदि विद्यमान है तो समता स्वतः ही मिल जायेगी। समरसता के अभाव में समतावादी समाज भी संघर्ष को जन्म दे सकता है। नरेंन्द्र मोदी इस भाव को समझते थे इसीलिये उन्होंने कहा कि

''केवल समभाव काफी नहीं है समभाव में ममभाव को जोड़ना चाहिए–समभाव + ममभाव = समरसता। ऐसी समरसता ही समाज के रोग की रामबाण दवाई बन सकती है। सभी इनकम टैक्स ऑफिसर बन जाएँ, सभी शिक्षक, बन जाएँ, सब व्यापारी बन जाएँ तो शायद इतने से समता आए; परंतु एक सवर्ण की लड़की नर्स हो और एक दलित की लड़की भी नर्स हो, एक सवर्ण का लड़का शिक्षक हो और एक दलित का लड़का भी शिक्षक हो तो समभाव आए; परंतु जब तक ममभाव नहीं आएगा। तब तक समरसता नहीं आयेगी और इस ममभाव का दायित्व देश के समरसता धारको का है।''[7]

मोदी ये जानते थे कि आरक्षण के आधार पर दलित वर्ग को समानता तो मिल सकती है परनतु समाज एक रस हो पायेगा इसमें उन्हें सन्देह था।

समरसता का अभिप्राय है, समाज को एक जुट करना एवं पारस्परिक भेदभाव को समाप्त करना है। भारतीय समाज एक मन्दिर, एक श्मशान, एक कुँआ आदि–आदि के आधार पर समानता ढूँढ़ने का प्रयास कर रहा है क्योंकि भेदभाव के यही मुख्य आधार रहे थे। लोगों को समरसतावादी समाज बनाने के लिये प्रेम एवं अपनत्व पर काम करना होगा।

हिंदू समाज बहुत ही परिवर्तनषील रहा है और इस परिवर्तनशील समाज में बुराईयों के विरुद्ध लड़ता भी रहा है। छुआछुत बुराई है, अस्पृश्यता बुराई है, ऊँच–नीच एक बुराई है। इनके सामने खड़े होकर सबको लड़ना पड़ेगा; पूरी शक्ति से, निष्चय के साथ, दृढ़ता के साथ लड़ना पड़ेगा। मात्र नौकरियाँ या आर्थिक स्थिति समग्र परिस्थिति को नहीं बदल सकती है। इसके लिए तो 'अपनेपन' का भाव चाहिए। जो ईश्वर तुझमें बैठा है, वही ईश्वर मुझमें भी बैठा है– 'तू ही मैं हूँ और मैं ही तू हैं', यह शास्त्रों ने हमें सिखया है और इसको ही आज फिर से स्वीकार करने की आवश्यकता है। मैं जब किसी को 'नमस्ते' कहता हूँ, तब नमस्ते का अर्थ होता है–'मैं तेरे अंदर बैठै हुए परमात्मा को नमन करता हूँ। वही परमात्मा मेरे अंदर बैठा है, मैं उस भी नमक करता

हूँ। हमारी विरासत में हमें यह 'नमस्ते' प्राप्त हुआ है, हमारे अंदर यह गहराई तक उतरा हुआ है। अः समाज के लिए कटुता का भाव, समाज के लिए वैर–वृत्ति का भाव समाज के लिए किसी को दुत्कारने का भाव–इस प्रकार की जो परंपरा है, उसे बदलना चाहिए। इस कुरीति के खिलाफ हमें लड़ना होगा।

मोदी कहते हैं, ''भारत को एकरस, समरस और सशक्त राष्ट्र में खड़ा होना है वो समाज में घर गयी समस्त विकृत व्यवस्थाओं, परम्पराओं और मान्यताओं से मुक्त होना पड़ेगा।''

सन्दर्भ

1. *सामाजिक समरसता,* सुरूचि प्रकाशन, 2015; पृष्ठ **12**
2. *पाच्जन्य,* 25 मार्च, 2018 पृष्ठ **42**
3. *पांचजन्य* 25 मार्च, 2018
4. किरातार्जुनीयम् 1/12
5. *'समाजिक समरसता'* के विमोचन पर मुख्यमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी का उद्‌बोधन 16 अप्रैल 2070
6. *साधना,* 18 नवम्बर, 1989; पृष्ठ **15**
7. सामाजिक समरसता, पृष्ठ **28**
8. *डॉ० बाबा साहब अम्बेडकर व्यक्ति नहीं संकल्प* पृष्ठ ***17***